Journal Homepage: www.ijarpr.com ISSN: 3049-0103 (Online)

International Journal of Advance Research Publication and Reviews

Vol 03, Issue 9, pp 177-180, September, 2026

भारतीय धर्म–दृष्टि में दुःख

डॉ. नाजनी बेगम

एसोसिएट प्रोफेसर
एम. जी. कॉलेज, गया

शोध सार

मानवतावादी चेतना से अनुप्राणित दोनों ही परम्पराओं के अधीनस्थ धर्मों को मूल दृष्टि जीवन और जगत् को आक्रान्त करने वाले 'दुःख' पर है। इस लक्ष्य को अपने में सन्निवेशित कर जीवन एवं जगत् की दुःख से पूर्णतः निर्निमुक्त किया जाए। लेकिन यह तब तक संभव नहीं है, जब तक कि इसके कारण का सम्यक् बौध नहीं हो। एक चिकित्सक तभी व्यक्ति को रोग–मुक्त कर पाता है जब उसे न केवल रोग वरन् रोग के कारण का सम्यक जान होता है। दुःख के कारण सम्बन्धी भारतीय धर्म–परम्परा को दृष्टि के उद्बोधन का अर्थ है– इसके अधीनस्थ तीनों प्रमुख धर्मों–हिन्दू, जैन एवं बौद्ध धर्मों–को दुःख के कारण की दृष्टि का अभिप्रकाशन । प्रस्तुत प्रसंग में यही अभिप्रकाशन हमारा लक्ष्य है।

बीजशब्दरू दुःख, हिन्दू, जैन, बौद्ध, धर्म, ग्रन्थ ।

हिन्दू एवं जैन धर्म–दृष्टि में दुःख –कारण

हिन्दू धर्म कोई व्यक्ति–विशेष प्रणीत वर्म नहीं है, अतः न तो किसी व्यक्ति–विशेष के आप्त वचन और न ही कोई एक पवित्र ग्रन्थ इसकी अवधारणाओं के मूल प्रति के स्त्रोंत रूप में गृहीत हुए है। इसकी अवधारणाओं के एक से अधिक स्रोत हैं, जिनमें जहाँ एक तरफ पवित्र वर्म ग्रन्ध हैं तो साथ ही दूसरी तरफ इससे अषियोज्यतः संयूक्त दर्शन। दुःख के कारण विषयक हिन्दू–अवधा–रणा के सम्यक अभिप्रकाशन में यहाँ हमें प्रथमतः इसके प्रमुख आधार–स्त्रोतों को सामने लाना होगा। ये प्रमुख आधार स्रोत हैः

उपनिषद्

दुःख के कारण विषयक हिन्दू अवधारणा का प्रथम आधार स्रोत हैः उपनिषद् । जिसकी दृष्टि मैं सत्–असत्य् का अविषेक अर्थात् अज्ञान एवं इससे व्युत्पन्न अहंकार ही समस्त दुःख का मूल हेतु है। ध्यातव्य है कि उपनिषदों में नित्य जीवन का ज्ञान पुण्य है तथा अज्ञान (अर्थात मिथ्या दृष्टि) पाप है। इस मिथ्या दृष्टि को व्यक्त करने वाला आचरण और उसके कारण आत्मा का पृथककत्व ही दुःख का मूल कारण है। उपनिषदो के मत में संसार के समस्त पदार्थों की प्राप्ति केवल ईश्वर–प्राप्ति के साधन के रूप में ही स्वीकार किया जाना चाहिए। यदि उन्हें ठोस एवं पृथक रूप से माना जाता है तथा स्वयं मानव अपने को भी एक स्वतंत्र पृथक इकाई के रूप मैं स्वीकार करता है, तो वह निश्चयतः दुःख का मागी होता है। सत्य यह है कि इसकी दृष्टि में, वर्षामाव से पूर्व की सर्वोपरि सपा से निषेध करना अथवा अपनी सर्वागपूर्णता को घोषणा करना प्रान्ति है तथा इस प्रान्ति के अधीन वाचरण में अहं द्वारा पूर्णको सर्वश्रेष्ठता निराकरण दुःख का मूल हेतु है। वस्तुतः औकी अन्तदृष्टि से. जो स्थार्थ अहं की जन्म देती है और अपनी संकीर्णता के कारण सब प्रकार के त्याग से संकोच करती है, दुःख उत्पन्न होता है। ध्यातव्य है कि उपनिषदों दुःख को न तो माया अथवा प्रान्ति ही कहती है और न उनकी दृष्टि मैं यह कोई स्थायी भाव है। इनकी दृष्टि में यदि यह अयधार्थ है तो केवल इस वर्ष में इसे अवश्य ही सुख मैं परिवर्तित होना है।

ध्यातव्य है कि उपनिषदों की शिक्षा का सार तत्व है–अपने आपको पहचानो। इसी शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में दुःख एवं इसके कारण को स्पष्ट करने के क्रम में इसका मानना है कि अपनी आत्मा की ईश्वर से ऊँचा समझना पाप है तथा यही पाप दुःख का मूल कारण है। मनुष्य हमेशा दुःख से आक्रान्त नहीं रह सकता। वह अस्थायी असंतुलन की अवस्था मैं है एवं वस्तुओं के स्वभाव का विरोधी है। इसके अनुसार अन्तः में केवल सुख एवं आनन्द का ही आधिपत्य रहता है। मुण्डकोपनिषद् ने इसी को आध्यात्मिक शब्दों में व्यक्त करते हुए कहा है सत्य की ही जय होती है, असत्य को नहीं। दुःख एक निर्णयात्मक वस्तु है, यह कभी भी सबको सन्तोषप्रद सिद्ध नहीं हो सकता ।

गीता

गीता के आनुसार आसुरी–सम्पदा दुःख कारी वंधन का हेतु है।[1] ध्यातव्य है कि यहाँ दम्म, दर्प, अभिमान, ब्रौथ, पारुथ्य एवं अज्ञान को आसुरी सम्पदा कहा गया है।[2] श्री कृष्ण का स्पष्ट कहना है किः दम्म, मान, मद से समन्वित दुष्पूर्ण आसवित (कामनाएं) से युक्त तथा मोह (अज्ञान) से मिथ्या दृष्टित्व को ग्रहण का प्राणी अस्दाचरण से युक्त हो प्राणी दुःख के अधीनस्थ हो संसार–परिभ्रमण करते हैं।

काममा त्रित्य दुष्पूरं दम्ममानसदा न्विताः ।

मौहाद्गृहीत्वाश्वाद्ग्राहन् सद्ग्राहान् प्रवर्तन्तै शुचिव्रताः।[3]

इस श्लोक के विश्लेषण से स्पष्टतः यहाँ काम (आसवित) और मोह (अज्ञान) दुःख के दो प्रमुख कारण के रूप मैं प्रस्तुत होते हैं। इस श्लोक का पूर्वार्द्व काम से शुरू होता है तथा उत्तरार्द्व मोह से। संयुक्त श्लोक के पूर्वार्द् मैं गीता ने दम्म, मान और मद को दुष्पूर्ण काम के आत्रित कहकर स्पष्ट रूप से काम को इन सब में सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना है और उत्तरार्द्व मैं तो शब्द का उपयोग ही मोह के महत्व को स्पष्ट करता है। गीता यहाँ मोह (अज्ञान) के कारण दो बातों का होना स्वीकार करती है (1) मिध्यादृष्टि का ग्रहण तथा (2) असदाचरण । एक अन्य श्लोक मैं गीता ने मोह (अविद्या–अज्ञान) और आसक्ति (तृष्णा, राग या लोभ) को नरक का कारण बताकर उनके वन्धुत्व

को स्पष्ट किया है। यहां कहा गया है कि मोह–जाल मैं आवृत और काममोगों में आसक्त पुरुष अपवित्र नरको में गिरते हैं मोह और आसक्ति पतन के कारण है। सातवें अध्याय मैं गीता संसार (अर्थात् दुःख) के तीन कारणों की व्याख्या करती है, जिसके अनुसार इच्छा त्याग), देष और तज्जनित मोह से सभो प्राणी (मानव) अज्ञानी का वन संसार के दुःख को प्राप्त होते हैं। उल्लेखनीय है कि यहाँ गीता राग, द्वैष और मौह दुःख के इन तीन कारणों की व्याख्या ही नहीं करती वरन् इच्छा–देष से उत्पन्न मोह कर राग, देश मोह की परस्पर सापेक्षता को भी अभिव्यक्त करती है।

सांख्य योग

योग–सूत्र में दुःख के पाँच कारण माने गये हैं– 1. अविया, 2. अस्मिता (अहंकार) 3. राग (आसक्ति) 4. द्वैष और 5 अभिनिवेश (मृत्यु का मय)[4]। इनमें भी अविधा ही प्रभुत कारण है क्योंकि इसको दृष्टि में शेष चारों अविधा पर आधारित है। ईश्वर कृष्ण ने भी सांख्यकारिका में दुःख का कारण प्रकृति और पुरुष विषय के विपर्यय ज्ञान को माना है । यही विपर्यय मिथ्या ज्ञान कहलाता है।

न्याय–दर्शन

न्याय–दर्शन मैं दुःल के मूलभूत तीन कारण माने गये हैं– 1.राग, 2. द्वेष, और 3. मोह । राग (आसक्ति) के भीतर काम, मत्सर, स्पूहा, तृष्णा, लौर्मा माया तथा दम्भ का समावेश होता है, तथा द्वेष मैं क्रोध, ईष्या, असूया, द्रोह (हिंसा) तथा अधर्म का । मोह (अज्ञान) मैं मिथ्या ज्ञान, संशय, मान और प्रमाद होते हैं। राग और देश मोह तथा अज्ञान से उत्पन्न होते हैं। अतस्व सारांशतः मिठ्या ज्ञान ही समस्त दुःखों का मूल कारण है। गौतम ऋषि ने कहा है मिथ्या ज्ञान ही मोह है। यह मोह केवल तत्व ज्ञान को उत्पत्न रूप नहीं है, बल्कि शरीर, इन्द्रिय, मन और वेदना तथा बुद्धि के अनात्म होने पर मी इनमें मैं ही हूँ ऐसा जो ज्ञान और मोह है, वही वस्तुतः दुःख का कारण है।

ध्यातव्य है कि वैशेषिक दार्शनिकों का भी यही मंतव्य है।[5] अदैत वैदान्त मैं भी अविधा को ही दुःख एवं वन्धन का कारण माना गया है।

इन हिन्दू आधार स्रोतों के सामान्य सर्वेक्षण से इस तथ्य को स्पष्ट अभिव्यक्ति होती है कि दुःख के कारण के सम्वन्ध में सामान्य हिन्द्–दृष्टि मूलतः अविधा केन्द्रित है। सत्य यह है कि इस धर्म मैं अविधा को ही दुःख का मूल कारण माना गया है, क्योंकि अन्य शेष कारण यथार्थ में अविधा पर ही आधारित है। यहाँ मूलतः सही सामान्य स्वीकृति प्रभावी है कि दुःख संसार का स्वरूप (प्रकृति) है, लेकिन अनिवार्य नहीं वरन्
आकस्मिक तथा दुःख एवं वेदना को श्रृँखला के पीछे एक बुनियादी कारण है, और वह है मिथ्या ज्ञान ।

दुःख जन्म प्रवृति दौष मिथ्या ज्ञानानामुवरीचशपाये तत्त्वन्तवन्त–रापायादशवर्गः[6]

अविधा इसी मिथ्या ज्ञान अथवा अज्ञान का पर्याय है, जिसे ज्ञान का विपरीतार्थक मानते हुए हिन्दु धर्म–महर्षियों ने बुनियादी तौर पर दुःख एवं क्लेश का कारक माना है। इसी कारण हम समी मनोषियों को अनुशंसा रही है कि आध्यात्मिक जीवन का लक्ष्य आत्मा को अविद्या अथवा अज्ञान से मुक्ति दिलाकर ज्ञान के क्षेत्र में निष्ठा देना है। प्रश्न उठता है कि अविद्या को उत्पति कैसे होती है? शुद्ध आध्यात्मिक दृष्टि से संचालित होकर हिन्दू धर्म मनीषियों ने माना है कि अविद्या की उत्पत्ति यथार्थ में सृष्टि तपा दृष्टि के व्यक्त रूपों मैं सिमटने में है। ध्यातव्य है कि इस धर्म द्वारा दृष्टि के अनुसार हर व्यक्ति मैं निहित ईश्वरीय शक्ति में यह सम्भावना निहित है कि वह अपने को सीमित कर–अपनी दृष्टि की सीमा से वह मात्र अपने मैं सक्रिय शक्ति सार्वभौम मूल शक्ति की अपेक्षा कर ले। यही अविद्या अधवा अज्ञान है. जो व्यक्ति को जगत के सक्रिय रूपों तक सीमित कर देता है. यह अविया इस कारण है कि यह सत् के मूल स्वरूप के प्रति अज्ञान है।

इस विवेचन से यह स्पष्ट ह कि अधिया अथवा अज्ञान का अर्थ–ज्ञान शुन्यता नहीं है, वरन् मिथ्या ज्ञान है तथा मिथया ज्ञान वह है जिसमें हम एक वस्तु को उसकी यथार्थ अवस्था में न जानकर अन्य वस्तु से स्मपर्क करते है। हिन्दू आध्यात्मिक शब्दावली मैं कहा जाए तो अनात्मन् को यदि आत्मा समझ लिया जाए तो यह मिथया ज्ञान अथवा अविधा कहलाएगा। हिन्दू–स्वीकृति के अनुसार इस अविधा के कारण जीव (मानव) अपने आत्म–स्वारूप की मूलकर अनात्म पदार्थों और अनात्म धर्मों की अपने ऊपर आरोपित करता है, वह कलत्र, पुत्र, मित्रादि वाह्य वस्तुओं से, देह से, इन्द्रियाँ से, अन्तःकरण से और इनके वर्षों से तादात्म्य स्थापित करता है। वह अहंकार और समकार से ग्रस्त होकर स्वयं को कर्ता और मौक्ता समझता है तथा जन्म–मरण चक्र मैं संसरण करता है। अतः मिथ्या ज्ञान रूप यह अविधा सारे अनर्थों का मूल कारण है। इसी अविधा से राग, द्वेष और मोह उत्पन्न होते हैं। ध्यात्व है कि राग वह है जिसके कारण वस्तुओं की लिप्सा अथवा तृष्णा उत्पन्न होती है। जब इच्छित वस्तु प्राप्ति में बाधा पहुँचाती है, तो द्वेष उत्पन्न होता है। मोह एक मनौवैज्ञानिक स्थिति है, जिसके कारण राग और द्वोष दोनों उत्पन्न होते हैं। अतः मूलतः अविया ही दुःखो का कारक है।

प्रसिद्ध समसामयिक हिन्दू मनीषि महर्षि अरविन्द ने इस हिन्दू स्वीकृति के प्रति पूर्ण सहमति का भाव रखते हुए उस अविधा अथवा अज्ञान का सूक्ष्म विश्लेषण कर मानव बुद्धि के पकड में आने वाले इसके सात रूपों को सामने लाया है जो जीव की चेतना को अपनी अपूर्णता एवं मिधयात्व से पूर्णतः आच्छादित कर मानव के व्यावहारिक जीवन को दुःखों से आक्रान्त किए हुए है। अज्ञान के ये सात रूप हैं–

1. प्राथमिक अथवा बाप अज्ञान–– अर्थात् उस मूल निरपेक्षा सत् का अज्ञान जो समी वास्तविक समझी जाने वाली सभी वस्तु की पृष्ठ–मूमि में है। यही अज्ञान (अविधा) यथार्थ मैं समी प्रकार के अज्ञान के मूल में है।
2. व्रक्षाण्डमूलक अज्ञान– अर्थात जगत के वास्तविक स्वरूप के संबंध में अज्ञान जगत के परिवर्तनों को यथार्थ समझने का विपर्यय ।
3. अहंकेन्द्रित अज्ञान– अर्थात आत्मा के वास्तविक स्वरूप का अज्ञान। दूसरे शब्दों में सीमित वैयक्तिक अस्तित्व को ही एकमात्र रूप से वास्तविक ज्ञान इससे भिन्न अन्य जो कुछ भी है उसे आत्म रूप नहीं मानने का अज्ञान ।
4. सामयिक अज्ञान– अर्थात जीव के अपने नित्य एवं शाश्वत् स्वरूप का अज्ञान, दूसरे शब्दों में इसका अज्ञान कि हमारी वास्तविक सत्ता तथा स्थान–काल की स्थितियाँ तक ही सीमित है।
5. मनौवैज्ञानिक अज्ञान– अर्थात जीव का वह अज्ञान जिसके अधीन वह अपने जीवन के ऊपरी धरातली क्रिया–व्यवहारों मैं इतना तल्लीन रहता है कि वह इससे ऊपर की उपचेनावस्था तथा परात्मूलक चेतनावस्था, आन्तरिकता आदि की सम्भावनाओं के विषय में सोचने का उपक्रम मी नहीं करता । अरविन्द की दृष्टि मैं यथार्थ मैं यह उसका अज्ञान है।
6. राचनिक अज्ञान– अर्थात वह अज्ञान जो मानव के सामान्य जीवन का ढंग जिस रूप में संरचित है, उसी मैं वह प्रवेश किया हुआ है, वह मी इस प्रकार कि वह अपने जीवन की वास्तविक संरचना से अनभिज्ञ रह जाते हैं। यहाँ श्री अरविन्द ने एक महत्वपूर्ण तम्य को और निर्देश किया है। इनके अनुसार मानव अपने भौतिक जीवन या प्राण शक्तियाँ अपवा मानसिकता या फिर इन समी के सम्मिश्रण को अपने जीवन को वास्तविक संरचना समझ लेता है। यह प्रायः सर्वमान्य प्रचलित धारणा है कि हमारी वास्तविक संरचना और प्राण तथा मन से है। इसका वर्ष है कि मानव सामान्यतः इस तप्य है अनभिज्ञ रहता है कि उसकी संरचना को गहराईयाँ मात्र इन तीनों तक सीमित नहीं है। इसी कारण वह यह मी नहीं समझ पाता कि शरीर, प्राण, मन इत्यादि की मी शक्ति उसकी उन्हीं वास्तविक गहाराच्या मैं स्थित शक्ति से है।
7. व्यावहारिक अज्ञान– श्री अरविन्य के अनुसार इन समी अज्ञानों के फलस्वरूप मानव का व्यावहारिक जीवन पूर्णतः अव्यवस्थित हो जाता है। उसका सामान्य

व्यावहारिक जीवन कुछ वर्षों में अर्थहीन तथा लक्ष्यहीन प्रतीत होता है क्योंकि जीवन के वास्तविक लक्ष्य को अनभिज्ञता उसके जीवन को दिशा को ही भ्रमित कर देती है। फलतः उसका व्यावहारिक जीवन को भ्रम मूल और अनर्गल कार्यों में ही उलझा रहता है, जिसका परिणाम होता है कि उसका जीवन दुःखपूर्ण कष्टमय और अर्थहीन वन जाता है।[7] यही व्यावहारिक अज्ञान है। सारांशतः मानव जीवन के दुःख का मूल कारण, हिन्दू धर्म–दृष्टि में, अविधा अथवा अज्ञान है।

हिन्दू धर्म को मूल स्वीकृति का अनुसरण करते हुए जैन धर्म मैं भी अज्ञान की जीव के दुःख का प्रमावी कारण स्वीकार किया गया है। अचार्य कुन्दकुन्द ने समयसार मैं इस स्वीकृति को पुष्टि मैं दुःख को बन्धन–कारक मानते हुए इसकी स्पष्ट उद्घोषणा की है कि बन्धन एवं दुःख का मूल कारण अज्ञान है।[8] प्रज्ञापनासूत्र में भगवान् ने गौतम को सम्बोधित करते हुए कहा है कि ज्ञानावरणीय कर्म के तीव्र उदय से दर्शनाकरणीय कर्म का तीव्र उदय होता है, दर्शनावरणीय कर्म के तीव्र उदय से दर्शन मोसनीय कर्म का तीव्र उदय होता है दर्शन मोह के तीव्र उदय से मिध्यात्व का तीव्र उदय होता है और मिथ्यात्व के उदय से जीव आठ प्रकार के कर्म बाचते हैं एवं परिणामस्वरूप दुःख के भागी बनते हैं। इस कथन से स्पष्ट है कि दुःख का मूल कारण अज्ञान है। उचराययनसूत्र में राग और द्वेष इन दोनों को कर्म–बीज कहा गया है[15] तथा उन दोनों का कारण मोह अर्थात अज्ञान बतलाया गया है। ये राग और द्वेष साथ–साथ रहते हैं, फिर मी उनमे राग ही प्रमुख है । राग के कारण ही द्वेष होता है। जैन व्याखनों के अनुसार इन्द्रभूति गौतम का महावीर के प्रति प्रशस्त राग मी उनके केवत्य की उपलब्धि में वाधक रहा था। इस प्रकार राग एवं मोह (अज्ञान) ही दुःख के प्रमुख कारण है। आचार्य कुन्दकुन्द ने राग को प्रमुख कारण बताते हुए कहा हैः आस्कत आत्मा ही कर्म–वन्ध का दुःख का भागी बनता है और मुक्त हो जाता है, यही जितने भगवान का उपदेश है। इसलिए कर्मों मैं आसक्ति मत रखों।[9] लेकिन यहां यह मी महत्वपूर्ण है कि यदि राग (आसवित) का कारण जानना चाहें तो जैन धर्म परम्परा के अनुसार मोह (अज्ञान) ही इसका कारण सिद्ध होता है। यद्यपि मोह और राग–देष सापेक्षा रूप में एक दूसरे के कारण बनते हैं। इस प्रकार द्वोष का कारण राग और राग का कारण मोह है। मोह तथा राग, जैन मान्यता में, परस्पर एक दूसरे के कारण है। सारांशतः राग, मोह और द्वोष ये तीन ही जैसा परम्परा में दुःख के मूल कारण है। इनमें से द्वोष की जो राग (आसक्ति) और मोह ये दो कारण बनते हैं, जो बन्योन्याश्रित है।

<u>वौद्ध धर्म–मत मैं दुःख का कारण</u>

हिन्दू एवं जैन धर्म–मर्तों को परम्परा मैं बौद्ध धर्म ने भी दुःख की स्वीकृति के साथ–साथ दुःख के कारण के सम्यक अन्वेषण के आधार पर इसकी निवृति को अपना मूल लक्ष्य बनाया है। इसकी मी मूल स्वीकृति है कि दुःख अकारण नहीं है, लेकिन यह कारण है क्या? द्वितीय बौद्ध आर्य सत्य दुःख समुदय तथा यहाँ प्रतिपादित प्रतित्य समुत्पाद इसी प्रश्न के उपर के विशिष्ट प्रयास है जिसमें प्रथम के अधीन जहाँ मनौवैज्ञानिक विश्लेषण एवं आध्यात्म क्रिया–विषयक कल्पनाओं को लेकर संसार में प्रमावी दुःख के कारण को स्पष्ट करने की चेष्टा हुई है। यहीं दूसरे के अधीन आश्रित उत्पत्ति के सिद्धान्त के आधार पर इस दुःखमय जीवन की उत्पत्ति की व्याख्या का प्रयास हुआ है।

दुःख समुदयः मगवान बुद्ध प्रतिपादित द्वितीय आर्य सत्य के अधीन दुःख के आदि कारण के विषय में इस सत्य का प्रतिपादन है कि सम्पूर्ण दुःखों का मूलतृष्णा है। यपार्थ मैं यह प्रबल तृष्णा ही है जिसके कारण बार–बार जन्म लेता है और उसी के साथ इन्द्रियों सुख आते है, जिसकी पूर्ति जहां–तहाँ से की जाती है–अर्थात इन्द्रियाँ की तृप्ति के लिए प्रवल लालसा अथवा सुख–समृद्धि की प्रवल लालसा ही दुःख का कारण है।

दर्द तो पन मिक्सवै दुक्तसमुवर्य अरियस ।
यौर्य तण्हा पोनों मविका नन्दिशरागसश्मता तवतवामिन्दनी,
सैय्यधोर्द–का मतण्हा, मक्तण्हा, विमवतण्हा।[10]

यहाँ विचार के कुछ प्रश्न सामने आते हैं :

प्रथमतः तृष्णा का स्वरूप क्या है? मज्झिम निकाय के महातण्डा संख्य सुच में भगवान् ने तृष्णा के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा हैः मनुष्य अपनी आँखों से रूप को देखता है। प्रियकर रूप में आसक्त हो जाता है तथा अप्रियकर रूप से दूर भागता है। कान से शब्द को सुनकर, प्राण से गन्ध का आघ्राण का जिहवा से रसास्वादन कर, कार्य से स्पर्श कर तथा मन से धर्म को जानकर प्रिय लगने पर उस आर्सवत हो जाता है तथा अप्रिय लगने पर उससे घृणा करता है। इस प्रकार आसक्त होने वाली या दूर मागने वाली (वेदना) का अनुभव करता है, वह उस वेदना मैं बानन्द लेता है, प्रशंसा करता है, उसे अपना बनाता है। वेदना को अपना बनाने से उसके प्रति आसक्त हो जाता है। वेदना के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है–वेदनापच्च्या तण्हा तथा तृष्णा के कारण उपादान. उपादान के कारण मव जाति और जाति के कारण जरा–माण, शौक, दुःख दौर्मनस्यादि होते हैं। इस प्रकार दुःख–समुह का उदय होता है । इस तरह कामना ही तृष्णा है, जो सम्पूर्ण अनर्थों का मूल है । दुःख का कारण है। दुःख समुदाय है। इस तृष्णा के कारण संसार में संरक्षण होता रहता है ।

तण्हाय नीयति लोको, तण्हाय परिवस्यति[11]

ध्यातव्य है कि मगवान बुद्ध ने ज्ञान प्राप्ति के वाद अनायास ही यह उद्घोषणा की थी कि गृहकारक तृष्णा को ही उन्होंने देखा था, अतः तृष्णा हो दुःख समुदाय अर्थात दुःख का कारण है।

द्वितीयतः तृष्णा कैसे उत्पन्न होती है तथा इसका निवास कहाँ है? उपर के क्रम में कहा गया है यह तृष्णा प्रिय एवं मनीश रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्शों मैं उत्पन्न होती है तथा इसी में निवास करती है। इसी प्रकार यह चुक्ष, गौत्र, प्राण, जिहवा और कार्य मैं उत्पन्न होती है तथा यहीं निवास करती है और साथ ही चतुर्विज्ञान से लेकर मनोविज्ञान तक में । अर्थात चक्षु से रूप की देखने के वाद सुन्दर रूप के प्रति आसक्ति हो जाती है, उस रूप को प्राप्त करने की इच्छा होती है, सुन्दर रूप प्राप्त हो जाने पर भी पुनः पुनः उस रूप के आस्वाद की इच्छा होतो रहती है । इस प्रकार किसी वस्त् को पुनः पुनः प्राप्ति की अति उत्कृष्ट अभिलाषा ही तृष्णा है। सत्य यह है कि नन्दि और राग तृष्णा ही है। इसलिए विर्मग मूल टीका में कहा गया है नन्दन वर्ष में नन्दी (लौम) है तथा व्यंजन वर्ष मैं राग (आसक्ति है। सत्य यह है कि नन्यिराम और तृष्णा यथार्थ में स्कार्थक है इनकी अनेकता केवल व्यंजतः है।

इसलिए नन्दिराग और तृष्णा को एक समझना चाहिए।[12] विर्मग अनुटीका में नन्दन अर्थ का निरूपण अमितस्सन किया गया है, जिसका अर्थ है किसी वस्तु की प्राप्ति को अमितृष्णा। इस प्रकार रूप तृष्णा, शब्द तृष्णा, मन्व तृष्णा रस तृष्णा स्पर्श और धर्म की तृष्णा हो दुःख का कारण है ।

तृतीयतः तृष्णा का अस्तित्व कितने प्रकार के अधोन है? उपर के क्रम में यहाँ इसके तीन प्रकार को स्वीकार किया गया है।

काम तृष्णाः अर्थात वह तृष्णा जो नाना प्रकारों के विषयों की कामना करती है। रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श को प्रबल आसक्ति या इच्छा ही काम तृष्णा है। वह इन विषयों के प्रति शाश्वत दृष्टि से युक्त राग उत्पन्न होता है तब यह मृगतृष्णा होती है तथा इन विधयाँ के प्रति उच्छेद और विनाश दृष्टि विषय तृष्णा[13] हैं।

प्रतीत्य समुत्पादः निखयतः तृष्णा खुद के द्वितीय आर्य सत्य के अनुसार दुःख सौत्पाद का मूल कारण है. लेकिन इसको उत्पति भी स्वयं अन्य पर आश्रित है और वह है अविधा अथवा अज्ञान । स्पष्ट है कि हिन्दू में जैन धर्मों को परम्परा में बौद्ध धर्म भी अविधा को दुःख का परम कारण मानता ह, तथा एक तरफ दुःख को सापेक्षा कारणता के निर्वचन तथा दूसरी तथा पुनर्जन्म और दुःखानुभव के आसन्न कारणों के विवेवन 'प्रतीत्यसमुत्पाद का प्रतिपादन करता है। ध्यातव्य है कि प्रतीत्य समुत्पाद विया के स्वरूप की मीमांसा कर परमार्थ का संकेत करता है। अविधा–विपरित जगत के आभ्यंतर, बौद्ध धर्म के अनुसार, कार्य–कारण नियम को प्रक्रिया क्रियमाण रहती है। बौद्ध

प्रतिपादित प्रतीत्य समुत्पाद अविधा– जीवन के भीतर दुःख के चक्राकार वैकासिक रूप की अन्वाख्यान काता है। इस चक्राकार वैकासिक रूप की बारह कडियाँ है। इन कड़ियाँ के दो छौर हैं–– एक छोर है दुःख और दूसरा छोर है अविधा । उल्लेखनीय है कि इन दोनों छोरों से चला जा सकता है, एक से आरम्भ किया जाए तो दूसरे तक पहुंना जा सकता है इसे निम्मतः स्पष्ट किया जा सकता हैः

अविद्या (कारण) से दुःख (कार्य)

दुःख का मूल कारण है अविया। अविद्या जो अज्ञान का अर्थ वधिक है–वस्तुतः वास्तविक अवास्तविक, जीव–अजीब के अन्तर और सम्वन्ध के अवोध का प्रतिक है। अविधा से संस्कार उत्पन्न होते हैं। संस्कार का अर्ध है कर्म–संस्कार अर्थात संस्कार के रूप में संचित कर्म। संस्कार से विज्ञान उत्पन्न होता है। यहाँ विज्ञान का वर्ष है सीमित, सापेदा, सविकल्प विज्ञान अर्थात अविधा और कर्म संस्कारों से कलुपित विज्ञान । अविधा और कर्म संस्कार कारण शरीर है जो शुद्ध चौतन्य को आवत कर उसे सीमित व्यक्तिगत विज्ञान के रूप में प्रतीत कराता है तथा उसे जन्म–मृत्यु के चक्र में घुमाता रहता है। विज्ञान से नामरूप उत्पन्न होता है। नाम रूप का वर्ष है विज्ञान से अनुप्राणित मनोभौतिक शरीर। नाम रूप षडायतन उत्पन्न होते हैं। ये छः षडायतन है पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ तथा एक मन या अन्तःकरण । ये ही छः षडायतन अर्थात इन्द्रियाँ माग करने के उपकरण या साधन है। षडायतन से स्पर्श उत्पन्न होता है। स्पर्श का अर्थ है विज्ञानुप्राणित इन्द्रिय का विषय से सम्पर्क । ध्यातव्य है कि इन्द्रियाँ को नैसर्गिक प्रवृति इस सम्पर्क से होती हैं। स्पर्श से वेदना उत्पन्न होती है। वेदना का अर्थ है– इन्द्रिय संवेदन या इन्द्रियानुभव। वेदना से तृष्णा उत्पन्न होती है. तथा तृष्णा से उपादान। उपादान का अर्थ है। विषय सूत में अत्युदय आसक्ति अर्थात भोगों से बुरी तरह चिपकना। उपादान से भव उत्पन्न होता है, जिसका अर्थ है कर्मों के फल भोग हेतु जन्म और पुनर्जन्म लेने का संकल्प। मय से जाति उत्पन्न होती है। जाति का वर्ष है जन्म एवं साथ ही पुनर्जन्म मी । जाति से जरा–मरण उत्पन्न होता है अर्थात दुःख । अतः अविधा आदि कारण है तथा दुःख उसका कार्य ।

उपसंहार

उपर्युक्त निरुपण प्रतीत्यसमुत्पाद का अनुलोम, अर्थात् कारण से कार्य का, वर्ण न है, जिसमें मानव अविधा से जरा–मरण अर्थात दुःख तक जाता है। इसके प्रतिलोम, अर्थात कार्य से कारण के, निरूपण मैं मानव जरा–मरण से अविधा तक पहुँचता है। यह इस प्रकार है मानव को प्रिय संयोग, प्रिय वियोग, आदि, व्याधि, शौक, जरा–मरण इत्यादि दुःख क्यों होते हैं ? क्योंकि उसने जन्म लिया है। वह जन्म एवं साथ ही पुनर्जन्म क्यों लेता है ? क्योंकि उसने जन्म लेने के लिए प्रेरित करने वाले कर्म किये है तथा उसमें उनका भोग करने के लिए जन्म लेने की इच्छा है। ये इच्छा और कर्म क्यों होती है? क्योंकि वह भौगों में आसक्त होकर उनसे चिपका रहा है। यह आसक्ति क्यों होती है? क्योंकि उसमें भोगों की तृष्णा है। यह तृष्णा क्या होती है? क्योंकि भोगों से इन्द्रिय संवेदनजन्य सुख मिलता है। यह संवेदन क्या होता है? क्योंकि इन्द्रिय और विषय का सम्पर्क होता है। यह सम्पर्क क्या होता है? क्योंकि उसके पास छः इन्द्रियाँ हैं, जिनकी प्रवृति विषयों से सम्पर्क काने की होती है। यह छः इन्द्रियाँ क्या होती है ? क्योंकि यह विज्ञान से अनुप्राणित है। विज्ञान इनमें प्रविष्ट क्यों होता है? क्योंकि पूर्व कर्मों के संस्कार उसे वाध्य करते हैं। ये कर्म–संस्कार क्यों होते हैं? क्योंकि अविध्या कर्मों में प्रवृत काती है। अतः अविधा ही इस संसार–चक्र रूपी दुःख का मूल है।

सन्दर्म सूची

1. भग्वद्गीता, 16/5 (टी०) एस० 11 राधाकृष्णन, पृ0 266
2. वही, 16/4 पृ0 266 ।
3. वही, 16/40।
4. योगसूत्र, 2/3 ।
5. 5 द्वष्टव्य, प्रशस्तपाद मात्य, पृ० 53 ।
6. सांरचकारीका 44, 47 एवं 48।
7. न्यायसूत्र 1/1/2 हिन्दी न्याय दर्शन, वात्स्यान माध्य सहित) पु 4/1/13/6।
8. समयसार, गा० 256 स्वं 1530 आचार्य कुन्दकुन्द, 20 पन्नालाल जैन, पर मनुत प्रभाषक मंडल, वौरिया (गुजरात), 1674
9. द्वष्टव्य, जैन दर्शन, मनन और मीमांस, मुनि नथमल, आर्दश साहित्य संघ, कु (राजस्थान), 1673 पृ० 283
10. समयसार, गा० 157
11. मारतोय दर्शन, खण्ड 10 स० राधाकृष्णन, पृ० 266
12. विर्भग, पु0 126
13. संयुक्तानिकाय, भाग, 1 पू0 37
14. विमंग मूल टीका पू0 106
15. दृष्टव्य, दिव्य जीवन मी अरविन्द, पृ० 58 ।
16. पतंजली, योग सुजप्र0–112
17. व्रहदारेण्यक उपनिषद्, 414151/24– पतंजली, योगसूत्र, 2/14